ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor (RJIF): 8.4
IJAR 2024; 10(5): 109-115
www.allresearchjournal.com
Received: 19-02-2024
Accepted: 22-03-2024

Dr. Usha Kumari JB
Associate Professor,
Department of Hindi
Mahatma Gandhi College,
Thiruvananthapuram, Kerala,
India

Corresponding Author:
Dr. Usha Kumari. J.B
Associate Professor
Department of Hindi
Mahatma Gandhi College,
Thiruvananthapuram, Kerala,
India

लंबी कविता 'एकलव्य' में अभिव्यक्त गुरु-शिष्य संबन्ध

Dr. Usha Kumari JB

सारांश
भारतीय संस्कृति की गरिमा बढाने में ' एकलव्य ' की कथा बहुत महत्वपूर्ण और सहायक होती है। एकलव्य की गुरुभक्ति, कर्त्तव्यपरायणता और कठिन परिश्रम सबको मानवीय मूल्यों का पाठ देने योग्य है। इसलिए आधुनिक काल में भी एकलव्य की कथा को महत्वपूर्ण स्थान है। अपने आत्म विश्वास के बल पर समस्याओं का सामना करके आगे जीने की प्रेरणा इस से सबको मिलती है। ' एकलव्य ' एक लंबी कविता है। डॉ. शोभनाथ पाठक ने इसकी रचना की है। आजकल मानव-समाज में जितनी प्रगति हुई है, तो भी एकलव्य की कथा की प्रासंगिकता दिन ब दिन बढ़ती जा रही है। हमारे धर्म ग्रंथ 'महाभारत ' में एकलव्य की कथा आती है। एकलव्य के गुरु कौरव-पाण्डव के राजगुरु द्रोणाचार्य है।

कूटशब्द: राजाश्रय, समष्टि, उत्तीर्ण, शर्त, अरमान, गुरु-दक्षिणा, ऋणी, दुस्साहस, कल्याण।

प्रस्तावना
प्राचीन काल से ही मानव - समाज में छुआछूत की समस्या फैल रही है। वास्तव में आरंभ से ही यहाँ रहनेवाले लोग ही आदिवासी है। लेकिन धुआछूत के नाम पर मानव-समाज में उन्हें कोई स्थान नहीं मिलता है। सवर्ण लोगों को मिलने वाले अधिकार भी उन्हें प्राप्त नहीं हैं। एकलव्य इस श्रेणी में आता है।
आदिवासी (भील) राजा हिरण्यधनु का पुत्र है एकलव्य | बचपन से ही वह समर्थ एवं कुशल है। विद्या प्राप्त करने में उसको विशेष रुचि थी। इसलिए उसके पिता उसे उचित शिक्षा देने के बारे में बहुत चिंतित थे। पिता धनुर्विद्या में वीर था। इसलिए पुत्र को भी उसमें रुचि थी। अपने प्राणों से प्रिय पुत्र को सबसे वीर धनुर्धर बनाने की इच्छा पिता के मन में हुई।

" उचित प्रबन्ध धनुर्विद्या का,
कैसे हो सकता है?" [1]

पिता को हमेशा चिंतित रहते देखकर बेटा ने कारण पूछा- "तात ! आज चितिंत क्यों इतने ....." [2]। तब पिताजी ने अपने मन की आशंका व्यक्त की,

" बेटा! तुम्हें धनुर्विद्या में
पारंगत करना है।
पर 'अछूत' अभिशाप बना है,
तिरस्कार सहना है।" [3]

बेटे को उचित धनुर्विद्या दिलाने की इच्छा होने पर भी, अछूत होने के कारण मानवीय अधिकारों से वंचित होने वाले जन-समुदाय का करुण स्वर यहाँ प्रकट हुआ है। भील जाति के होने के कारण प्रिय पुत्र को उचित शिक्षा देने में असमर्थ पिता के मन की व्याकुलता यहाँ प्रकट है।

धनुर्विद्या में प्रतिभा होने पर भी एकलव्य को जीवन में छुआछूत का दुष्परिणाम अनुभव करना पडा । यहाँ कवि सूचित करना चाहते है कि ईश्वर की दृष्टि में सभी मनुष्य समान है। लेकिन यहाँ जाति-व्यवस्था भयानक स्वार्थ बन गया है।

" ईश्वर की संतान सभी हैं,
कोई भेद नहीं है।
पर समाज की विकृत व्यवस्था
जाति-पाँति का भेद भयानक.....।" [4]

बालक एकलव्य ने पिता के व्यथित मन को शान्त करने केलिए कहा कि कौरव-पाण्डव के गुरु द्रोणाचार्य महा धनुर्धर है, वे ज्ञानी और परम पंडित है। उनके मन में उच्च-नीच का भेद न होगा। भोले-भाले एकलव्य यह नहीं जानता था कि जीवन की विभिन्न गति-विधियों में गुरु द्रोण को भी यह प्रतिज्ञा लेना पड़ा, वे क्षत्रिय राजकुमारों को ही शिष्य के रूप में स्वीकार करेंगे ।

पिता के चरण-वन्दना करके, उनसे अशीर्वाद लेकर, बड़े उल्लास से, मन में दृढ संकल्प करके गुरु-गृह की ओर चले एकलव्य के मन को, गुरु दर्शन से और गुरु वचनों से बडा आघात पहुंचा। उसको मालूम हुआ कि,

"अर्जुन उनके श्रेष्ठ शिष्य थे,
क्षत्रिय राजकुमारों में,
सब एक एक से बढकर ।"[5]

कौरव - पाण्डव कुमारों को शिक्षा देने में लीन रहे गुरु के सामने अचानक एकलव्य प्रकट हुआ । उसने गुरु-चरणों में सिर झुकाकर, प्रणाम किया । एकलव्य की गुरु भक्ति देखकर गुरु और राजकुमार चकित रहे। एकलव्य के मुँह से उसका नाम, पिता का नाम, जाति, और उसका आग्रह सुनकर राजकुमारों ने उसका उपहास किया, गुरु ने उसकी निन्दा की।

"शूद्र शिष्य स्वीकार करूँ मैं,
यह तो बात असंभव ।
शूद्र - सवर्ण साथ में रहकर,
कैसे पढ़ सकते हैं?" [6]

गुरु और उनके शिष्यों द्वारा ' शूद्र ' कहकर अपमानित होने पर भी, एकलव्य ने मन में बड़ा संकल्प ले लिया । जिस प्रकार लोहे का उपयोग न करके उसे छोड़ देने तो उससे केला भी काट नहीं सकते, लेकिन उसका उपयोग नित्य करके, उसे चमकाते रहे तो उससे पत्थर भी तोड़ सकते। उसी प्रकार अपमानों से लज्जित और निराश होकर रहे तो आगे का जीवन दुष्कर होगा । उसके बदले समस्याओं और अपमानों का सामना करके आगे बढ़ने पर जीवन में सफलता प्राप्त होगी।

इस सिद्धान्त के बल पर उसने अपना मनोबल बढाकर जीवन में आगे बढ़ने का निश्चय लिया। इस विचार से स्वयं आश्वस्त हो गया कि,

"ज्ञान-कर्म - इन्द्रियाँ सभी सम,
सब मानव कहलाते ।
ईश्वर ने संसार रचा है,
समता के संबल से।
भेद-भाव का नाम नहीं है
सबको अधिकार धरा पर,
उन्नति और अभय का।" [7]

इसी समय उसके मन में यह विचार उठा कि लौटकर पिता से क्या बताएँगे? गुरु के जवाब से पिता दुखी होंगे। इस उलझन में पड़ने पर अचानक उसे वहाँ माहा ऋषि नारद का उपदेश सुनने का मौका मिला ।

" होनहार हो, पुत्र ।
जहाँ संकल्प - साधना - श्रम है,
वहीं सफलता,
होना नहीं निराश,
गुरु भक्ति से ज्ञान प्राप्ति,
सब कुछ मिल जाता ।
गुरु-शिष्य का स्नेह,
मानवता कल्याण इसी में,
गुरु-शिष्य संबन्ध,
वज्र से भी यह दृढ है।"[8]

महा ऋषि नारद के वचनों में कवि ने गुरु-शिष्य संबन्ध की महिमा का गुण-गान किया है। गुरु-शिष्य संबन्ध राष्ट्र की रीढ़ है, इस पर राष्ट्र का विकास हो रहा है। सच्चे गुरु से ज्ञान प्राप्त करने पर जीवन में सफलता पा सकते।

नारद के उपदेश को मूल मंत्र समझकर एकलव्य ने जंगल में ही मिट्टी से गुरु द्रोण की मूर्ति बनायी । गुरु भक्ति से प्रभावित होकर, गुरु पूजा करके, वह दिन-रात धनुर्विद्या सीखने लगा।

" अर्जुन से उत्कृष्ट बने,
एकलव्य धनुर्धर । " [9]

अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए उसने अपनी श्रद्धा-भक्ति द्रोण की मूर्ति पर अर्पित किया । उसके लिए सब सुख वर्जित था। अर्थात वह लक्ष्य प्राप्ति में लीन रहा। ब्रह्म मुहूर्त में उठकर, दैनिक कार्य करके, गुरु पूजा के बाद तीर चलाने लगता । यही उसका दैनिक क्रम बन गया।

"नित उठ ब्रह्म मुहूर्त,
क्रिया दैनिक निपटाता ।
गुरु पूजा पश्चात
धनुष पर तीर चढाता ।" [10]

नित्य अभ्यास करके-करके वह धनुर्विद्या में पारंगत बन गया | उसमें धनुर्विधा और रण कौशल की कला की सब शक्ति समन्वित हो गयी।

वीर धनुर्धारी बनने पर भी वह जंगल में रहकर अभ्यास करते रहा। ऐसे अवसर पर एक दिन उसके पास एक कुत्ता भौंक कर आया। तुरंत ही, भौंकने के लिए खुले कुत्ते के मुँह में सात तीर भरे। अर्थात त्वरित गति में एक साथ सात तीर चलाकर एकलव्य ने कुत्ते के मुँह को भरा दिया । तीरों से भरे मुँह से कुत्ता अपने स्वामी के पास पहुँचा।

" द्रोण शिष्य का श्वान यही था,
कौरव - पांडव चकित रह गये,
यह किसका दुस्साहस इतना
उसको पाठ पढ़ायें ।" [11]

कुत्ते को इस अवस्था में देखकर कौरव- पाण्डव चकित रहे कि गुरु द्रोण और वीर धनुर्धारी अर्जुन से बढ़कर कौन है, धनुर्विद्या में इतना समर्थ । यह जानने के लिए वे सब कुत्ते के पीछे घोर वन में गये। वन पहुँचकर वे समझ गये कि एकलव्य ही ऐसा समर्थ धनुर्धर है, जिसने एक साथ तीर चलाकर कुत्ते को निःशब्द बना दिया। इसलिए उसके नाम, पिता, ग्राम, गुरु, उद्देश्य आदि जानने का आग्रह प्रकट किया गया। साथ ही कुत्ते पर तीर चलाने का कारण पूछा गया। उसको यह समझाने की कोशिश भी की गयी कि धनुर्विद्या कठिन तपस्या है। यह बच्चों का खेल नहीं है। बालक होकर उससे मत खेलना।

राजकुमारों ने सोचा कि कुत्ते पर तीर चलाकर एकलव्य ने कौरव-पांडव कुमारों को पराजित करने का श्रम किया। राजकुमारों से इस प्रकार का दोषारोपण सुनकर एकलव्य भयभीत न हुआ। उसने बड़े आवेग से कौरव-पांडवों के सभी प्रश्नों के उत्तर देकर, अपना परिचय सधैर्य दिया।

"भील राज का पुत्र हूँ

है एकलव्य हमारा नाम
द्रोणाचार्य गुरु है मेरे
धनुर्धर बनना लक्ष्य।" [12]

अछूत बालक एकलव्य के मुँह से गुरु द्रोणाचार्य का नाम और धनुर्धारी बनने का उनका जीवन-लक्ष्य सुनकर राजकुमार तड़प उठे। उनको मालूम हुआ कि छुआछूत के नाम पर भी वह धनुर्विद्या से पीछे मुडने के लिए तैयार नहीं है। वह कहता है कि दूसरे क्षत्रिय बालकों के समान अछूतों को भी धनुर्विद्या में अधिकार है। जिसके मन में दृढ संकल्प, कर में शक्ति, हृदय में इच्छा और अपने आप पर विश्वास है, वह निर्भय कठिन अभ्यास करके लक्ष्य प्राप्त कर सकता। लेकिन इसके लिए गुरु कृपा अत्यन्त आवश्यक है।

गुरु द्वारा तिरस्कृत होने पर भी, उसने मिट्टी से गुरु की प्रतिमा बनायी और गुरु चरणों में वन्दना करके, अपने आपको समर्पित किया। भक्ति भाव से नित्य गुरु प्रतिमा का पूजन-अर्चन करके, शरीर और मन को शुद्ध रखकर, दिन-रात धनुर्विद्या के अभ्यास में लीन रहकर, वह तीर चलाने में इतना समर्थ बन गया। एकलव्य के अनुसार, ज्ञान-प्राप्ति में पूर्ण लगन होना चाहिए। जाति-पाँति के भेद को विद्यार्जन में कोई स्थान नहीं है। गुरु द्रोणाचार्य को उसने पूर्ण मन से अपना गुरु मान लिया । उसकी गुरु भक्ति अतुल्य है।

"जीवन भर हूँ ऋणी गुरु को,
मेरे लिए वही भगवान ।" [13]

एकलव्य ने कहा कि गुरु से प्राप्त होने वाले ज्ञान से मानव उच्च और महान बनता है। उसकी गुरुभक्ति देखकर और सुनकर कौरव-पांडव स्तब्ध रहे। वे इस सच्चाई के सामने लज्जित हुए कि धनुर्विद्या में एकलव्य उनसे भी समर्थ बन गया है। बडी व्याकुलता से वे गुरु के पास गये। राजकुमारों के मुँह से एकलव्य की प्रतिभा सुनकर गुरु बोले-

"..... इसमें है क्या मेरा दोष ?" [14]

अब भी गुरु अपने विश्वास पर अटल रहे कि इस धरती पर एक ही श्रेष्ठ धनुर्धारी होगा। लेकिन पांडु पुत्र आर्जुन ने अत्यन्त व्याकुल होकर किसी न किसी प्रकार उसको पराजित करने का निश्चय किया।

एकलव्य के कठिन अभ्यास को कुटिलता से निष्फल बनाने केलिए,कौरव-पांडव कुमारों ने गुरु से मिलकर गूढ उपाय सोचा। वे इस तथ्य के अच्छा ज्ञाता थे कि तीव्र गति से तीर चलाने में धनुर्धर अंगूठे का सहारा अधिक लेता है।

एकलव्य को पराजित करने की चिन्ता में वे मानवता को भूल गये । उनका मन ईष्या से भर गया। सोच-सोचकर उन्होंने एक मार्ग ढूंढ निकाला।

"गुरु द्रोण को गुरु मानकर
इसने शिक्षा पूर्ण किया
अतः दक्षिणा में अंगूठा
इसमें ही अपना कल्याण।" [15]

एकलव्य की प्रतिभा को कपटता से नष्ट करने के उद्देश्य में, उससे गुरु दक्षिणा के रूप में अँगूठा माँगने का गूढ उपाय गुरु के सामने रखा गया। अपनी प्रतिज्ञा पालन के उद्देश्य से गुरु भी उनके साथ एकलव्य के पास चले। अपने पास गुरु को साकार देखकर एकलव्य का मन खुशी से भर गया। अछूत बालक के पास गुरु के आगमन को वह अपना भाग्य मानता है। विवश होकर गुरु ने अपने आगमन का उद्देश्य उसके सामने प्रकट किया कि अपनी प्रतिमा के सामने विद्यार्जन पूरा करने पर, गुरु दक्षिणा अर्पित करने से ही फल प्राप्ति होगी। गुरु दक्षिणा के रूप में गुरु के सामने अपना सबकुछ अर्पित करने को वह तैयार हो गया। लेकिन गुरु ने प्रिय शिष्य से दायें कर का अंगूठा काट देने का आग्रह प्रकट किया। गुरु के आग्रह पूति केलिए उसने बड़े उत्साह से कटारा निकाला।

"काट दिया तत्काल अंगूठा
गुरु चरणों में डाला।" [16]

दायें कर के अंगूठे के बिना तीर चलाना असंभव जानकर भी उसने अंगूठा काटकर गुरु चरणों में अर्पित किया, और उसे स्वीकार करने की प्रार्थना की। सारा नभ, देव लोक, तारा गण और सभी एकलव्य की गुरु दक्षिणा देखकर चकित रहे। वास्तव में एकलव्य की गुरु भक्ति के आगे गुरु द्रोण भी स्तब्ध रहे।

"इसे माँगाकर, नहीं मिला तो
मैं पागल हो जाऊँगा।" [17]

एकलव्य की गुरु भक्ति के आगे कौरव- पांडव कुमार स्वयं लज्जित हो गये। दुनिया में शिष्य की गुरु भक्ति और समर्पण भाव के लिए इससे बढ़कर कोई उदाहरण नहीं है। लेकिन यह सर्वथा गुरु द्रोण पर कलंक रहा। अंगूठा लेकर गुरु मन से रोये और अपने आपको पापी मानने लगे।

अंगूठा काटने के कारण एकलव्य के हाथ से रक्त बह रहा था । उसने उससे गुरु की प्रतिमा को स्नान कराया।

शयन कक्ष जाकर भी गुरु द्रोण सो न सके। उसने अनुभव किया कि -

"आज अनर्थ हुआ है।" [18]

इन सबकेलिए कारण बनी अतीत की घटनाएँ क्रमानुसार उनकी स्मृति में आती रहीं ।

द्रोणाचार्य ने धनुर्विद्या के प्रकाण्ड आचार्य थे। लेकिन आर्थिक पराधीनता के कारण सबके द्वारा तिरस्कृत थे। अपने एकमात्र पुत्र अश्वत्थामा को एक पाव दूध पिलाने में भी वे असमर्थ थे। खेल के बीच-बीच जब दूसरे बच्चे दूध पीते हैं, तब अश्वत्थामा भी दूध पीने के लिए ललचाये रहता। कारण यह है कि दूसरे बच्चे गाय का दूध पीकर उसका सुमधुर स्वाद बताते तो अश्वत्थामा उस स्वाद से बिलकुल अपरिचित रहता। इस पर दूसरे बच्चे उस पर हँसी उड़ाते रहते। और कहते रहते हैं कि गरीब होने के कारण असको पीने के लिए सुमधुर दूध नहीं मिलता। दूसरे बच्चों द्वारा अपमानित होने पर वह रोता हुआ घर आता और दूध पीने की इच्छा प्रकट करना।

बच्चों के आग्रह पूर्ति के लिए पिता ने उसके साथ छल किया। पिता के सामने यही एक मार्ग था, कि, उन्होंने आटे में पानी मिलाकर कृत्रिम दूध बनाया और बच्चे को पिलाया। द्रोणाचार्य अच्छी तरह जानते थे कि यह घटना उसके पूरे जीवन को कलंकित करेगी।

" छाती पर पत्थर रख,
कृत्रिम दूध वनाया,
आटे को पानी में मिलाकर
उसे पिलाया " [19]

दूध पीकर आये अश्वत्थामा पर दूसरे बच्चों ने फिर से हँसी उडायी, जिससे उसकी गरीबी सबके सामने प्रकट हुई।

"अरे मूर्ख, यह दूध नहीं
आहे का पानी। " [20]

इस अवसर पर द्रोण समझ गये कि उनके अधा पतन और अपमान भरे जीवन का मूल कारण निर्धनता है। इसलिए गरीबी से बचने का मार्ग सोचा। तभी उन्हें बचपन के मित्र की याद आई। सहपाठी बनकर रहते समन उसने इसप्रकार की वादा किया था,

"जब वह राजा बन जाएगा,
आधा राज्य हमें देगा ।" [21]

अब द्रोण के बचपन के मित्र द्रुपद पांचाल देश के राजा है। वैभव पूर्ण जीवन बिताने वाले राजा से मिलने के लिए वे प्रातः उठकर चले। सुखमय जीवन की आशा से वे पांचाल देश पहुँचे। राजमहल पहुंचकर द्रोण ने देखा कि बडा दरबार है, सिंहासन पर राजा द्रुपद शोभित है। बड़ी खुशी से अपना परिचय देकर द्रोण ने कहा-

"बचपन के हम सहपाठी ।" [22]

द्रोण के मुँह से सहपाठी शब्द सुनकर द्रुपद ने दोनों के अन्तर समझाया-

"राजा-रंक मित्रता,
कैसे संभव हो सकती है।" [23]

भरी सभा में अपनी निर्धनता के कारण उसे घोर अपमान सहना पड़ा। घर लौट आने पर उसके मन में प्रतिशोध की भावना ललक उठी। किसी न किसी प्रकार गरीबी से मुक्त होने की आशा उनके मन में हुई।
आग्रह पूर्ति की चिन्ता में विवश होकर वे हस्तिनापुर पहुँचे। कौरव-पांडव कुमारों को धनुर्विद्या सिखाने में मग्न रहे। राजाश्रय में रहने के कारण उनको भीष्म वचन का पालन करना पडा -

"क्षत्रिय राजकुमारों को ही,
धनुर्वेद सिखलाना है।
कुल की कीर्ति बढाना है। [24]

द्रोणाचार्य ने यह शर्त स्वीकार कर लिया ।उनके शिष्यों में अर्जुन अग्रगण्य रहा।
धनुर्विद्या पढने में उसकी विशेष रुचि, वीरधनुर्धर बनने की उच्चा कामना, महिमामय गुरु भक्ति आदि से द्रोणाचार्य बहुत प्रभावित थे।

"अतः द्रोण अर्जुन पर उतना
स्नेह भाव भी रखते थे।" [25]

धीरे धीरे अर्जुन द्रोणाचार्न का प्रिय शिष्य बन गया। इसलिए राजा द्रुपद पर प्रतिशोध करने का दायित्व अर्जुन पर पड़ा। इस बीच एकलव्य की प्रतिभा को उन्होंने जान बूझकर समाप्त करना चाहा। पूरे जीवन में उन्हें कठिन आर्थिक पराधीनता से अपमानित और तिरस्कृत जीवन जीना पड़ा। घोर अपमन से वे एकदम पागल हो गये थे। उनके मन से सद्भावनाएँ और कोमल भाव नष्ट हो गये। दिल को पत्थर बनाने में वे विवश थे।

"अपमानों से आहत होकर,
पागल बन जाता इन्सान ।" [26]

इस विवशता में उन्होंने एकलव्य पर अन्याय किया | इसको कोई प्रायश्चित नहीं। यह जानकर वे अत्यन्त व्याकुल हो गये ।
आगे की गुरु-शिष्य परंपरा के लिए एकलव्य की गुरु दक्षिणा से यही सन्देश मिलता है-

"जाति-पाँति का भेद मिटाओ।" [27]

छुआछूत के अन्त का आह्वान इस कविता का प्रमुख उद्देश्य है।
भील आदिवासियों के बीच बीस वर्ष उनकी सेवा में लीन रहे कवि इस सच्चाई से परिचित हो गये कि आज भी भील तीर चलाने में अंगूठे का उपयोग नहीं करते। फिर भी भयानक जंगली जानवरों पर अपनी दो उंगलियों की सहायता से तीर चलाने में वे समर्थ बने रहते हैं।

संदर्भ

1. एकलव्य - पृ.सं -14
2. (शोभानाथ त्रिपाठी)
3. वही -पृ.सं -14
4. वही -पृ.सं -15
5. वही -पृ.सं -15
6. वही -पृ.सं -19
7. वही -पृ.सं -21
8. वही -पृ.सं -22
9. वही -पृ.सं -23
10. वही -पृ.सं -26
11. वही -पृ.सं -27
12. वही -पृ.सं -28
13. वही -पृ.सं -30
14. वही -पृ.सं -33
15. वही -पृ.सं -34
16. वही -पृ.सं -39

17. वही -पृ.सं -41
18. *17.*वही -पृ.सं -43
19. वही -पृ.सं -46
20. वही -पृ.सं -52
21. वही -पृ.सं -52
22. वही -पृ.सं -54
23. वही -पृ.सं -55
24. वही -पृ.सं -55
25. वही -पृ.सं -57
26. वही -पृ.सं -57
27. वही -पृ.सं -58
28. वही -पृ.सं -59